अहिंसा : वर्तमान सन्दर्भ में

—श्री मदन मुनि 'पथिक'

सन्दर्भ वर्तमान का है, किन्तु यह जान लेने योग्य बात है कि अहिंसा का महत्व आजीवन है। भूतकाल हो, वर्तमान काल हो अथवा भविष्य। क्योंकि अहिंसा और जीवन एक ही है। इन्हें पर्यायवाची माना जाना चाहिए। स्पष्ट है कि जहाँ हिंसा है वहाँ जीवन नहीं है। हिंसा तथा जीवन तो स्वतः विरोधी हैं—दो भिन्न ध्रुव। यह बताने की आवश्यकता ही कहाँ रहती है कि हिंसा है तो फिर जीवन नहीं। और यदि जीवन है, जीवन को होना है, तो फिर अहिंसा तो अनिवार्य स्थिति ही हुई जीवन की।

इस अकाट्य तथ्य की धारणा के पश्चात हम अहिंसा के महत्व का विचार करें, विशेष रूप से आधुनिक सन्दर्भ में।

अहिंसा जैन धर्म तथा दर्शन का आधारभूत लक्षण अथवा स्तम्भ है। यह वह नींव है, जिस पर जैन दर्शन का भव्य एवं अद्वितीय प्रासाद स्थित है—वह प्रासाद, जहाँ सुख है, शान्ति है—ऐसा शाश्वत सुख तथा ऐसी शाश्वत शान्ति जिसका फिर कभी कहीं भंग नहीं है।

और ऐसी स्थिति किसी अन्य धर्म में नहीं है। संसार में अनेक धर्म पहले भी थे, अब भी हैं, आगे भी होंगे। किन्तु केवल जैन धर्म ही है जो अकाट्य रूप से अनादि है। वर्तमान में विश्व के प्रमुख धर्म हैं—हिन्दू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म तथा इस्लाम धर्म। इनमें से इस्लाम, ईसाई तथा बौद्ध धर्म तो पिछले दो-अढाई हजार वर्ष से ही अस्तित्व में आए हैं, यह सारे संसार को विदित है। शेष रहे हिन्दू तथा जैन धर्म। इन दोनों के अनुयायी अपने अपने धर्म को अनादिकालीन होने का दावा करते हैं किन्तु खोज करने पर प्रकट होता है कि वेदों और भागवत आदि ग्रन्थों में, जोकि हिन्दू धर्मशास्त्रों में अधिक से अधिक प्राचीन माने गए हैं, जैनों के वर्तमान तीर्थंकर चौबीसी के पहले तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के सम्बन्ध में उल्लेख मिलते हैं। इससे सहज ही यह सिद्ध हो जाता है कि इन दोनों धर्मों में भी जैन धर्म ही अधिक प्राचीन है। ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा सिद्ध इस बात को अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने स्वीकार किया है। जैन अनुश्रुति के अनुसार भगवान महावीर ने किसी नए तत्त्वदर्शन का प्रतिपादन अथवा प्रचार नहीं किया है। भगवान पार्श्वनाथ के तत्त्वज्ञान से उनका कोई मतभेद नहीं है किन्तु जैन अनुश्रुति उससे भी आगे जाती है। उसके अनुसार श्रीकृष्ण के समकालीन भगवान अरिष्टनेमि की परम्परा को ही भगवान पार्श्वनाथ ने ग्रहण किया था। और स्वयं अरिष्टनेमि ने प्रागैतिहासिक काल में होने वाले नमिनाथ से। इस प्रकार यह अनुश्रुति भगवान ऋषभदेव, जो कि भरत चक्रवर्ती के पिता थे, तक पहुँचा देती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। इसके अनुसार तो वर्तमान वेद से लेकर उपनिषद् पर्यन्त सम्पूर्ण साहित्य का मूल स्रोत ऋषभदेव द्वारा प्रणीत जैन तत्व विचार ही है।*

प्रस्तुत निबन्ध में हमें जैन तत्त्वविचार के अहिंसा पक्ष पर ही विशेष रूप से विचार करना है। अन्यथा इस तत्त्वविचार की श्रेष्ठता के विषय में तो यदि एक-एक बिन्दु पर भी लिखा जाय तो एक-एक महाग्रन्थ लिखे जा सकते हैं। हमने जैन दर्शन की अनादिकालीनता के विषय में संकेत किया तो वह मात्र इसी दृष्टि से कि हम इस दर्शन की श्रेष्ठता को पहले हृदयंगम करलें और तत्पश्चात अहिंसा, जो कि जैन धर्म का आधार है, के महत्त्व को पूरी तरह से समझ सकें।

तो आइये, अब हम अहिंसा पर कुछ विचार करें।

अहिंसा का महत्त्व—अनिवार्यता एवं उपादेयता

विश्व इतिहास को उठाकर देखिए, आप पायेंगे कि धर्म के नाम पर धार्मिक असहिष्णुता के कारण जितनी हिंसा हुई है, असमर्थ लोगों पर जितने अत्याचार हुए हैं उतने किसी अन्य कारण से नहीं। कितने खेद का विषय है कि धर्म मनुष्य को आन्तरिक शक्ति, आध्यात्मिक उन्नति प्रदान करता है, किन्तु उसी का दुरुपयोग करके बौद्धिक हिंसा का आश्रय लेकर, मनुष्य ने स्वयं अपना तथा समस्त मानव जाति का घोर अकल्याण किया है। ऐसी धार्मिक असहिष्णुता के कारण भीषण हिंसक कृत्य न केवल हमारे ही देश में, बल्कि समस्त विश्व में होते रहे हैं। इसके स्थान पर यदि मानव ने अहिंसा की उपादेयता को समझा होता तो ये भीषण हिंसक कृत्य न हुए होते और मनुष्य बड़ा सुखी होता।

जैन दर्शन में अहिंसा सर्वोपरि है। हम उसे जैन दर्शन का, जीवन का पर्यायवाची ही कह सकते हैं, यह बात हमने प्रारम्भ में भी कही थी और उसे पुनः दुहराते हैं। भगवान महावीर ने स्पष्ट कहा है कि जो तीर्थंकर पूर्व में हुए, वर्तमान में हैं, तथा भविष्य में होंगे, उन सबने अहिंसा का प्रतिपादन किया है। अहिंसा ही ध्रुव तथा शाश्वत धर्म है। स्वार्थी लोग जैन दर्शन द्वारा प्रतिपादित अहिंसा के सम्बन्ध में लोगों ने भ्रम उत्पन्न करते हैं, उसे अव्यवहार्य बताते हैं, कहते हैं कि यह तो मात्र वैयक्तिक बात है, अतः सामाजिक एवं राजकीय प्रश्नों के लिए अनुपयोगी है। किन्तु सच्चाई यह है कि ऐसा कहने वाले लोगों में जैन दर्शन द्वारा प्रतिपादित अहिंसा का पूर्ण अध्ययन किया ही नहीं है, उसे समझा ही नहीं है। यदि वे अहिंसा के अर्थ को, उसके महत्त्व को हृदयंगम कर पाते, यह समझ सकते कि मन—वचन—काया से मनुष्य को हिंसा से दूर रहना चाहिए तो आज संसार की ऐसी दयनीय स्थिति न होती, विश्व विनाश के कगार पर जा खड़ा न होता।

हमारे देश के जीवन में अहिंसा की जो छाप दिखाई देती है वह जैन दर्शन की ही देन है। सामूहिक प्रश्नों के निराकरण हेतु अहिंसा का प्रयोग हमारे देश में बहुत सफल रहा है और समस्त विश्व के लिए पथ-प्रदर्शन करने वाला है। कौन नहीं जानता कि महात्मा गांधी ने एक ऐसी महाशक्ति के विरुद्ध लड़ाई लड़ी थी जिसके साम्राज्य में कभी सूर्यास्त ही नहीं होता था और उस लड़ाई में विजय किसकी हुई? हमारी—हमारी "अहिंसा" की।

---

* न्यायावतार वार्तिकवृत्ति (प्रस्तावना)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु गाँधी चले गये और संसार फिर से अहिंसा के महत्त्व को भूलने लगा है। परिणाम हमारे सामने दिखाई देने लगे हैं। विश्व के स्वार्थी, अदूरदर्शी, अधर्मी राजनेता समस्याओं के निराकरण हेतु मिल-बैठकर अहिंसक भाव से प्रश्नों को हल करने के स्थान पर हिंसक वातावरण का सृजन कर रहे हैं तथा अशान्ति और सर्वनाश को आमंत्रित कर रहे हैं। इस विकट वेला में जैन दर्शन की "अहिंसा" ही मानवता का त्राण करने में समर्थ हो सकती है। अन्य कोई उपाय नहीं है।

अहिंसा क्या है

मन-वचन-काया, इन त्रिविध योगों से किसी को भी त्रिकरणपूर्वक कष्ट न पहुँचाना ही अहिंसा का वास्तविक लक्षण है। कुछ लोग प्राणों के अव्यपरोपण अर्थात् अनतिपात को ही अहिंसा कहते हैं, किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से, सांगोपांग मनन करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि केवल प्राण अव्यपरोपण को ही अहिंसा नहीं कहते हैं, प्रत्युत प्राणियों को किंचित् मात्र भी किलामना नहीं पहुँचाना ही अहिंसा है।

प्रतिपक्ष कितना भी शक्तिशाली हो, उसके प्रतिकार का सर्वोत्तम साधन अहिंसा ही है। अन्य किसी शस्त्र की आवश्यकता ही नहीं, अहिंसा का अमोघ अस्त्र विजय प्रदान करने वाला है, अन्तिम विजय, आन्तरिक आत्म-विजय।

हिंसा से होता क्या है ? हिंसा से हिंसा ही बढ़ती है। हिंसा प्राणों को चतुर्गतिरूप संसार में परिभ्रमण कराती रहती है जबकि अहिंसा उसे मुक्ति के पथ पर ले जाती है। कोई प्राणी अज्ञानवश थोड़े से समय विशेष के लिए हिंसा का आधार लेकर भ्रमित होकर विचार कर सकता है कि वह विजयी हुआ, अथवा उसे कुछ लाभ हुआ, किन्तु अन्त में यह विचार असत्य ही सिद्ध होगा। कहा गया है—

॥ दोहा ॥

जो जीववहं काउं करेइ खणमित्तमप्पणोतित्तिं।
छेअण भेअणपमुहं नरयदुहं सो चिरं लहइ॥

॥ छाया ॥

यो जीववधं कृत्वा करोति क्षणमात्रमात्मन सतृप्तिं।
छेदन भेदन प्रमुखं नरकदुःख स चिरं लभते॥

॥ दोहा ॥

अल्पकाल सुख मान के, हनै प्राणि को प्राण।
नरकमांहि चिरकाल तक, छिदे भिदे नहिं त्राण॥

अर्थ स्पष्ट है। जो भी प्राणी क्षणिक सुख की लालसा से किसी अन्य प्राणी को कष्ट पहुँचाता है, उसका नाश करता है, उसे फिर घोर कष्ट पाना पड़ता है, चिरकाल पर्यन्त नारकीय दुःखों का भोग करना पड़ता है।

अधिक प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं है फिर भी एक कथन पर जरा दृष्टिपात कीजिए—

हंतूणं परप्पाणे अप्पाणं जो करई सप्पाणं।
अप्पाणं दिवसाणं कएण णासेइ अप्पाणं॥

www.jainelibrary.org For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ छाया ॥

हत्वा परात्मानमात्मानं यः करोति सप्राणम् ।
अल्पानां दिवसानाम् कृते नाशयत्यात्मानम् ॥

॥ दोहा ॥

प्राणवान दुख को गिनै, हनै इतर के प्राण ।
अल्प दिवस दुष्कृत्य से करै आत्मा हान ॥

भावार्थ—जो व्यक्ति दूसरे जीवों के प्राण को नाश करके अपने को ही प्राणवान सिद्ध करता है वह थोड़े ही दिवसों में पापकृत्य द्वारा अपना ही नाश कर डालता है।

जब ऐसी स्थिति है तो क्या हमें अपने ही कल्याण के लिए यह विचार नहीं करना चाहिए कि हमारा क्या कर्तव्य है ? हमारे कल्याण का मार्ग कौन सा है ? यदि हम घड़ी भर ठहर कर भी शुद्ध विचार करेंगे तो पायेंगे कि अहिंसा का मार्ग ही वह राजमार्ग है जिस पर आगे बढ़कर हम अपना आत्म कल्याण कर सकते हैं तथा अपने साथ-साथ समस्त मानवता का त्राण भी कर सकते हैं। अतः—

॥ दोहा ॥

भवजलहितरी तुल्लं महल्ल कल्लाणदुम अभय कुल्लं ।
संजणिय सग्गसिव सुक्ख समुदयं कुवह जीवदयं ॥

॥ छाया ॥

भवजलाधितरी तुल्यो महाकल्याण द्रुमामय कुल्याम् ।
सज्जनित स्वर्ग शिव सौख्यं समुदयां कुरु जीवदयाम् ॥

भावार्थ—संसार रूपी समुद्र के लिए नौका तुल्य महा कल्याणकारी कल्पवृक्ष सदृश अभयदान तथा उत्कृष्ट स्वर्ग एवं मोक्ष सुख को प्रकट करने वाली जीव दया करो।

यही जीवदया अहिंसा है। मन से भी कभी किसी का अहित न चाहो। वचन से भी कभी किसी का दिल न दुखाओ। काया से कभी किसी प्राणी को, किसी जीव को कष्ट न दो। जीवदया करो। अहिंसक बनो। अपना आत्म-कल्याण साधो। मोक्ष की यदि अभिलाषा हो, भवचक्र से सदा-सदा के लिए यदि मुक्ति पानी हो तो जीवदयामय धर्म का ही आचरण करना चाहिए क्योंकि हिंसा न करने वाला जीव ही अमरण—मोक्ष को प्राप्त करता है।

अहिंसा—आचरण से होने वाले स्वहित का विचार विवेकपूर्वक करना ही चाहिए। लोग अज्ञान के कारण इस नश्वर काया को सुख पहुँचाने की इच्छा से, इसे पुष्ट करने की लालसा से, भ्रमवश ऐसा सोचते हैं कि मांसाहार करने से शरीर पुष्ट होता है। यह भयानक भूल है। ऐसा करना महापाप है। अहिंसा के अनुयायी को भक्ष्य अभक्ष्य का विचार अवश्य करना चाहिए। यूरोप, अमेरिका आदि के निवासी यह विचार बहुत कम करते हैं। किन्तु अब वहाँ के विचारवान व्यक्ति भी यह सोचने पर बाध्य हो गए हैं कि मांसाहार का त्याग करना, अहिंसा का आचरण करना ही चाहिए। वे लोग भी अपने "स्वभाव" की ओर लौटने लगे हैं। क्योंकि मानव जाति के स्वभाव की पर्यालोचना करने से स्पष्ट बोध हो जाता है कि मांसादि का खाना, हिंसा का आधार लेना मानव का स्वभाव नहीं है। अपना पेट भरने के लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मांस-भक्षण करना उसका स्वभाव कभी नहीं रहा। मानव मूलतया एक उपकार वृत्ति वाला प्राणी है। उसके पास विवेक है, सोचने-समझने की शक्ति है। वध के समय जीव कैसा आर्तनाद करता है, कितना छटपटाता है, उसे कितनी पीड़ा होती है—यह देखकर पाषाणों का हृदय भी पिघल जाना चाहिए। फिर मनुष्य तो मूलतः दयावान प्राणी है, अहिंसा उसका भूल भाव है।

अहिंसा का समर्थन प्रत्येक धर्म में किसी न किसी रूप में किया ही गया है। जैन धर्म तो अहिंसा पर ही आधारित है, इसलिए सर्वांग श्रेष्ठ है। देखिए—

१. आपात में अल्लाहताला ने कहा था—रक्त और मांस मुझे सहन नहीं होता। अतः इससे परहेज करो। —इस्लाम धर्म

२. तुम मेरे पास सदैव एक पवित्रात्मा रहोगे बशर्ते कि तुम किसी का मांस न खाओ। —बाईबिल

३. जो व्यक्ति मांस, मछली और शराब आदि सेवन करते हैं, उनका धर्म, कर्म, जप-तप सब कुछ नष्ट हो जाता है।

४. मांस खाने से कोढ़ जैसे भयंकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं। शरीर में खतरनाक कीड़े व जन्तु पैदा हो जाते हैं। अतः मांसभक्षण का त्याग करो।

—महात्मा बुद्ध (लंकावतार सूत्र)

५. बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात है, ताको कौन हवाल॥ —कबीरदास

६. मैं मर जाना पसन्द करूँगा लेकिन मांस खाना नहीं। —महात्मा गांधी

७. जो गल काटे और का, अपना रहे बढ़ाय।
धीरे-धीरे नानका, बदला कहीं न जाय॥ —नानकदेव

उपरोक्त कतिपय कथन—उद्धरण इतना स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं कि मानव को किसी भी रूप में हिंसा से दूर रहना चाहिए तथा अहिंसक बनना चाहिए।

एक अहिंसक व्यक्ति में कितनी आत्म श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है इसका एक छोटा सा उदाहरण हम अपने पाठकों के विचार हेतु यहाँ प्रस्तुत करने का लोभ संवरण नहीं कर पाते, क्योंकि उसमें पाठकों का हित निहित है—

अहिंसा में पूर्ण श्रद्धा रखने वाली एक महिला थी। चाहे प्राण चले जायँ, किन्तु वह अपने जानते हिंसा का आचरण कभी नहीं करती थी। एक दिन एक भयानक सर्प घर की नाली में घुस आया। उसकी विषैली फुफकार से घर के लोग भयभीत हो गए। किसी भी क्षण वह किसी को डस सकता था और उसकी मृत्यु निश्चित हो जाती।

आस-पास के लोग इकट्ठे हो गए। लाठियाँ लेकर वे उस सर्प को मार डालने के लिए उद्यत थे। किन्तु जब उस महिला को परिस्थिति का ज्ञान हुआ तब वह दौड़ी-दौड़ी वहाँ आई और बड़ी आत्म श्रद्धा तथा दयाभाव से बोली—"भाईयो, आप लोग इस सर्प को न मारें। मैं इसे जंगल में छोड़ आऊँगी।"

लोग विस्मित हुए कि ऐसा कैसे सम्भव है? किन्तु वे ठहर गए। महिला ने एक लाठी का छोर उस नाली के पास रखकर कहा—"हे नागराज! ये लोग लाठियों से पीट-पीट कर आपको अभी मार डालेंगे। अतः आइये, आप इस लाठी पर बैठ जाइये, मैं आपको जंगल में छोड़ आऊँगी।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आश्चर्यों का आश्चर्य। नागराज शान्त भाव से लाठी के छोर से लिपट गए। महिला जंगल का ओर चल पड़ी।

मार्ग में एक स्थान पर फिर से नागराज को जाने क्या सूझी कि लाठी पर से उतर कर फिर किसी घर में प्रविष्ट होने लगे। उस महिला ने फिर कहा—"नागराज! आप ऐसा न करें। लोग आपको मार डालेंगे। आइये, मेरी लाठी पर बैठ जाइये। मैं आपको एकान्त जंगल में छोड़ आती हूँ।"

नागराज पुनः चुपचाप लाठी से आकर लिपट गए और उस महिला ने उन्हें ले जाकर जंगल में छोड़ दिया।

इस छोटे से उदाहरण में बहुत बड़ा मर्म निहित है और वह है—अहिंसा भाव का महत्व, एक अहिंसक व्यक्ति की अडिग आत्मश्रद्धा। उस महिला के अहिंसा भाव को, उसके प्रेम को, दया भावना से परिपूर्ण उसके कोमल हृदय को मूक पशु ने भी जाना—पहचाना—स्वीकार किया।

अहिंसा के प्रताप को, उसके महत्त्व को क्या यह दृष्टान्त स्पष्ट रूप से उजागर नहीं करता।

वर्तमान काल बड़ा कठिन काल है। धर्म का लोप होता दिखाई देता है। मनुष्य स्वार्थान्ध होकर अंधी दौड़ में पड़ा है। एक देश दूसरे देश को हड़प जाना चाहता है। युद्ध के बड़े भीषण, विनाशकारी शास्त्रों का निर्माण हो चुका है। भूल से भी यदि वे शस्त्र फूट पड़े तो पृथ्वी का अन्त हो सकता है। मानवता लुप्त हो सकती है।

ऐसी स्थिति में जैन दर्शन की अहिंसा ही एक मात्र वह आधार बन सकती है जो विश्व की रक्षा कर सके। समय रहते इस तथ्य का स्वीकार संसार की महाशक्तियों को कर लेना चाहिए।

अन्त में—

सव्वे पाणा पिआउआ।
सुहसाया दुक्ख पडिक्कूला।
अप्पियवहा पियजीविणो
जीविउकामा,
सव्वेसिं जीवियं पियं
नाइवाएज्ज कंचणं। —आचारांग १/२/३

तथा—

अत्थि सत्थं परेण परं,
नत्थि असत्थं परेण परं। —आचारांग १/३/४

सब प्राणियों को अपना जीवन प्यारा है,
सुख सबको अच्छा लगता है और दुःख बुरा।
वध सबको अप्रिय है और जीवन प्रिय,
सब प्राणी जीना चाहते हैं,
कुछ भी हो जीवन सबको प्रिय है।
अतः किसी भी प्राणी की हिंसा न करो।

—शस्त्र (हिंसा) एक से एक बढ़कर हैं। परन्तु अशस्त्र (अहिंसा) एक से एक बढ़कर नहीं हैं। अर्थात् अहिंसा की साधना से बढ़कर श्रेष्ठ दूसरी कोई साधना नहीं है। □□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org